मेसर्स गुप्ता मॉडर्न ब्रेवरीज

बनाम

जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य

19 अप्रैल, 2007

[एच.के. सेमा और वी. एस. सिरपुरकर**, जे.जे.]**

कराधान:

जम्मू और कश्मीर डिस्टिलरी नियम, 1946 - नियम 17 *– यह निर्धारित किया जाता है कि अपीलकर्ता की डिस्टिलरी पर तैनात आबकारी विभाग के कर्मचारियों के वेतन पर होने वाला व्यय अपीलकर्ता से वसूल किया जाएगा।--* की औचित्यता- *अभिनिर्धारित : यह प्रावधान अनुचित एवं मनमाना है।-- आबकारी विभाग द्वारा दी जाने वाली सेवाएँ इस उद्देश्य से हैं कि निर्माता द्वारा स्पिरिट का डिनैचुरेशन विधिवत् किया जाए तथा यह सुनिश्चित किया जाए कि आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण डिस्टिलरी स्वामी या खुदरा विक्रेता के नियंत्रण से बाहर न जाए।-- चूँकि सरकार द्वारा वहन किए गए व्यय और नियम 17 के अंतर्गत वसूल की जाने वाली राशि के बीच कोई प्रत्यक्ष सहसंबंध नहीं है, अतः उक्त प्रावधान के अंतर्गत लिया जाने वाला शुल्क वास्तव में "फीस" न होकर "कर" है।--क्योंकि नियम 17 को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है, इसलिए उसके अंतर्गत लगाया गया आरोपण विधिसम्मत नहीं है।-- इस संदर्भ में जम्मू और कश्मीर आबकारी अधिनियम, 1901 की धारा 25 का उल्लेख किया गया।*

कर और शुल्क – अंतर -- पर विचार किया गया।

भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 265 – कर का अधिरोपण केवल विधि द्वारा ही किया जा सकता है, न कि उपविधियों या नियमों के माध्यम

से।

दिनांक 5.9.1973 को आबकारी आयुक्त द्वारा जम्मू और कश्मीर डिस्टिलरी नियम, 1946 के नियम 17 के अंतर्गत एक आदेश पारित किया गया, जिसके अनुसार आबकारी विभाग के कर्मचारियों के वेतन से संबंधित व्यय का 50% प्रबंधन से वसूल किया जाना था। तत्पश्चात् आबकारी आयुक्त ने अपीलकर्ता की डिस्टिलरी में तैनात आबकारी कर्मचारियों के वेतन के भुगतान की मांग की।अपीलकर्ता ने इस आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की, किंतु वह असफल रहा। इसके पश्चात् इस न्यायालय में अपील दायर करते हुए अपीलकर्ता ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए–

नियम 17 को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है। यह नियम जम्मू और कश्मीर आबकारी अधिनियम, 1901 की धारा 25 के अंतर्गत प्रदत्त नियम-निर्माण शक्ति से परे है तथा अत्यधिक प्रत्यायोजन से ग्रस्त है। यह नियम ब्रुअरी/डिस्टिलरी संचालकों को राजस्व-संग्रह में संलग्न सरकारी अधिकारियों के वेतन एवं व्यय का भुगतान करने हेतु बाध्य करता है, जो स्पष्टतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है। यह नियम वस्तुतः "फीस" नहीं बल्कि "कर" अधिरोपित करता है, जबकि इसके लिए विधिक प्राधिकार का अभाव है; अतः यह भारत का संविधान, 1950 के अनुच्छेद 265 के प्रतिकूल है।अंततः, यह नियम अविवेकपूर्ण एवं मनमाना है और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 14 के भी विरुद्ध है।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया–

अभिनिर्धारित: 1. यह अब विधि का सुव्यवस्थित एवं स्थापित सिद्धांत है कि नियामक शक्तियों की सामान्यतः व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए। तथापि, राज्य सरकार को कर, शुल्क अथवा अधिभार अधिरोपित करने का अधिकार केवल तभी मान्य होगा जब ऐसी मांग विधि द्वारा अधिकृत हो तथा उस विधि में पर्याप्त दिशानिर्देश निहित हों। (पैरा 22) [350-H]

2. संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत "कर" और "शुल्क" परस्पर भिन्न अवधारणाएँ हैं। आबकारी कर का ही एक रूप है। यह विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों से स्पष्ट है– भारत का संविधान, 1950 के अनुच्छेद 110(2) एवं 199(2) में "मनी बिल" की अवधारणा से यह स्पष्ट होता है कि करों को संसद द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है। संघ सूची में कर एवं आबकारी संबंधी प्रविष्टियाँ सूची-I की प्रविष्टि 82 से 92-B में निहित हैं। राज्य सूची में कर संबंधी प्रावधान सूची-II की प्रविष्टि 42 से 63 में निहित हैं। आबकारी का विशेष रूप से उल्लेख सूची-I की प्रविष्टि 84 तथा सूची-II की प्रविष्टि 51 में किया गया है। सूची-II की प्रविष्टि 51 विशेष रूप से मदिरा पर आबकारी से संबंधित है। शुल्क का भी पृथक रूप से उल्लेख दोनों सूचियों में किया गया है– सूची-I की प्रविष्टि 96 तथा सूची-II की प्रविष्टि 66– और यह एक पृथक अवधारणा है, जिसे भी विधायिका द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है। अतः कर, आबकारी एवं शुल्क– तीनों का अधिरोपण विधायिका द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक है। भारत का संविधान,

1950 के अनुच्छेद 265 के अंतर्गत कर केवल विधि द्वारा ही अधिरोपित किया जा सकता है; उपविधियों अथवा नियमों के माध्यम से उसका अधिरोपण करना विधिसम्मत नहीं है। (पैरा 33 एवं 34) [354-G-H; 355-A-C, D]

आंध्र प्रदेश सरकार बनाम मिस अनाबेशाही वाइन एंड डिस्टिलरीज प्राइवेट लिमिटेड, [1988) 2 एससीसी 25, को लागू नहीं माना गया।

मिस गुजकेम डिस्टिलर्स इंडिया लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, [1992) 2 एससीसी 399, विभेदित।

कलकत्ता निगम बनाम लिबर्टी सिनेमा, [1965) 2 एससीआर 477, इसका अनुसरण किया गया

खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (1995) 1 एससीसी 574; खोडे डिस्टिलर्स लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (1996] 10 एससीसी 304; ए.एन. परशुरामन बनाम तमिलनाडु राज्य, [1989) 4 एससीसी 683; कुंज बिहारी लाल बुटाई बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, [2000] 3 एससीसी 40; देवी दास गोपाल कृष्णन बनाम पंजाब राज्य, [1967] 3 एससीआर 557; इंडियन माइका माइकानाइट इंडस्ट्रीज बनाम बिहार राज्य, [1971) 2 एससीसी 236; केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त बनाम छाता शुगर कंपनी लिमिटेड (2004) 3 एससीसी 466 और मिस लीलासंस ब्रेवरीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (19921 3 एससीसी 293, का उल्लेख किया गया।

3.1. प्रतिवादीगण आबकारी स्टाफ की प्रतिनियुक्ति केवल इस उद्देश्य से नहीं कर रहे थे कि निर्माता द्वारा स्पिरिट का डिनैचुरेशन (आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण) विधिपूर्वक किया जा रहा है, बल्कि विशेष रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए भी कर रहे थे कि आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण, विधि के प्रतिकूल, न तो डिस्टिलरी के स्वामी के हाथों से और न ही किसी खुदरा विक्रेता, लाइसेंसधारी अथवा परमिट धारक के हाथों से बाहर जाए। अतः यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा वहन किए गए व्यय और नियम 17 के अधीन वसूल की जाने वाली शुल्क राशि के बीच कोई सह-संबंधनहीं था। वसूल की गई शुल्क और प्रदान की गई सेवाओं के बीच कोई प्रतिफल नहीं है। [पैरा 351] [355-F]

पंजाब राज्य बनाम देवांस मॉडर्न बेवरीज लिमिटेड, (2004 1 11 SCC 26; के.टी. मूपिल नायर बनाम केरल राज्य, (1961) 3 SCR 77; अहमदाबाद अर्बन डेवलपमेंट अथॉरिटी बनाम शरदकुमार जयंतीकुमार पासावल, [1992) 3 SCC 285; हिंदुस्तान टाइम्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2003) 1SCC591; बिमल चंद्र बनर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1970) 2 SCC 467 और कमिश्नर, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिरुर मठ के श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामी, (1954) SCR 1005, इसका अनुसरण किया गया

3.2. नियम 17 को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है तथा यह अधिनियम की सीमा से परे है। यह प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है। नियम 17 का प्रावधान स्पष्ट रूप से एक कर है, न कि शुल्क । राज्य द्वारा

स्वयं को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए, न कि करदाताओं को, नागरिकों पर कर या शुल्क अधिरोपित करना स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य, मनमाना एवं औचित्यहीन है। [पैरा 35] [356-D-E]

फेडरेशन ऑफ माइनिंग एसोसिएशन ऑफ राजस्थान बनाम राजस्थान राज्य, (1992 सप. 2 एससीसी 239)– **लागू नहीं माना गया।**

4. प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाता है कि अंतरावधि में की गई उक्त भुगतान राशि को वैधानिक दर से गणना किए गए ब्याज सहित वापस करें। [पैरा 39] [357-C]

दीवानी अपीलीय अधिकारिता*: सिविल अपील सं. 2700-2701 सन् 2000।*

यह अपील जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय, जम्मू द्वारा LPA सं. 159/1990 एवं ओडब्ल्यूपी सं. 549/1981 में दिनांक 11.02.2000 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है।

साथ ही

सिविल अपील सं. 2702 सन् 2000

डॉ. राजीव धवन, ई. सी. अग्रवाला, महेश अग्रवाल, ऋषि अग्रवाला तथा गौरव गोयल – अपीलकर्ता की ओर से।

एस. आर. सिंह, अनीस सुहरावर्दी तथा एस. मेहदी इमाम – प्रतिवादियों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय ... द्वारा प्रदान किया गया –

एच. के. सेमा, न्यायमूर्ति जे. 1. इन अपीलों का एक दीर्घ एवं जटिल इतिहास रहा है। तथापि, हम वर्तमान अपीलों के निस्तारण के उद्देश्य से, इनके दायर किए जाने तक की कुछ संक्षिप्त तथ्यों का ही उल्लेख करेंगे।

2. जम्मू और कश्मीर आबकारी अधिनियम, 1901 (जिसे आगे "अधिनियम" कहा जाएगा) दिनांक 4.12.1901 को पारित किया गया था।

3. जम्मू और कश्मीर डिस्टिलरी नियम, 1946 (जिसे आगे "नियम" कहा जाएगा) दिनांक 29.6.1946 को अधिरचित किए गए थे।

4. दिनांक 5.9.1973 को आबकारी आयुक्त द्वारा नियम 17 के अंतर्गत एक आदेश पारित किया गया, जिसके अनुसार आबकारी विभाग के कर्मचारियों के वेतन संबंधी व्यय का 50% कुल खर्च प्रबंधन से वसूल किया जाना था। तथापि, यह आदेश दिनांक 1.4.1974 को वापस ले लिया गया।दिनांक 13.8.1981 को आबकारी आयुक्त ने 5.9.1973 के आदेश द्वारा प्रदत्त छूट को वापस ले लिया। तत्पश्चात दिनांक 10.9.1981 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता की डिस्टिलरी में नियुक्त आबकारी कर्मचारियों के वेतन के भुगतान की मांग की गई। इस संबंध में दिनांक 6.10.1988 को मांग नोटिस जारी किया गया।

दिनांक 28.9.1981 को अपीलकर्ता ने ओ डब्लू पी सं. 549/1981 दायर कर नियम 17 को अधिनियम की सीमा से परे बताते हुए चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने वसूली की कार्यवाही पर स्थगन प्रदान किया।अपीलकर्ता ने स्टाफ शुल्क के संबंध में दिनांक 6.10.1989 को की गई मांग को चुनौती देते हुए रिट याचिका सं. 1208/1989 भी दायर की, जिसे माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 27 सितम्बर 1990 के आदेश से खारिज कर दिया गया।उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने एलपीए (डब्लू) सं. 159/1990 दायर की, जिसे खंडपीठ द्वारा विवादित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

अतः वर्तमान अपीलें प्रस्तुत की गई हैं।

5. अधिनियम की धारा 25 सरकार को नियम बनाने का अधिकार प्रदान करती है। वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक अंश इस प्रकार है–

"25. सरकार समय-समय पर नियम बना सकती है –

.....

.....

(g) आसवन यंत्रों , डिस्टिलरियों, निजी गोदामों तथा शराब की भट्टियों के निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण के लिए;

(o) सामान्यतः इस अधिनियम अथवा उस समय प्रभावी किसी अन्य विधि के उपबंधों को, जो आबकारी राजस्व से संबंधित हो, क्रियान्वित करने के लिए।"

6. यह दावा किया गया है कि नियम 17 की उत्पत्ति अधिनियम की धारा 25 से हुई है। तथापि, इसे अधिनियम की परिधि से परे बताते हुए चुनौती दी गई है। नियम 17 इस प्रकार है–

"यदि आबकारी एवं कराधान आयुक्त द्वारा अपेक्षित किया जाए, तो लाइसेंसधारी सरकार के कोषागार में वह राशि जमा करेगा, जो डिस्टिलरी में नियुक्त सरकारी आबकारी कर्मचारियों के वेतन के संबंध में मांग की जाए; परंतु वह ऐसे किसी भी कर्मचारी को कोई प्रत्यक्ष भुगतान नहीं करेगा।"

7. नियमों की वैधता को माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष, एल.पी.ए. पीठ के समक्ष तथा इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई है–(a) नियम को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है;(b) नियम, अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत प्रदत्त नियम-निर्माण शक्ति की सीमा से परे है तथा अत्यधिक प्रत्यायोजन से ग्रस्त है;(c) नियम के द्वारा शराब की भट्टियों से राजस्व संकलन में संलग्न सरकारी अधिकारियों के वेतन एवं व्यय का भुगतान कराया जा रहा है, जो प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है; (d) नियम विधि के प्राधिकार के बिना शुल्क नहीं बल्कि कर अधिरोपित करता है, अतः यह संविधान के अनुच्छेद 265 के प्रतिकूल है; तथा (e) यह नियम अविवेकपूर्ण एवं मनमाना है, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 14 के विपरीत है।

8. उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व, इस चरण पर यह उल्लेख करना उचित होगा कि इस न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि मदिरा का व्यापार रेस एक्स्ट्रा कॉमर्सियम है, अतः उसे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(g) का संरक्षण प्राप्त नहीं है। तथापि, मदिरा व्यापार के संबंध में कोई भी लाइसेंसिंग, विनियमन या अधिरोपण मनमाना अथवा भेदभावपूर्ण नहीं हो सकता।

9. ***खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य,*** [1995] 1 एस सी सी 574 में यह कहा गया है कि राज्य अपने राजस्व को अधिकतम करने के उद्देश्य से व्यापार या व्यवसाय के लिए लाइसेंस बेचने की कोई भी विधि अपना सकता है, बशर्ते कि अपनाई गई पद्धति भेदभावपूर्ण न हो।

10. ***खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य,***, [1996] 10 एस सी सी 304 में पैरा 13 में कहा गया है–

"यद्यपि अपीलकर्ताओं को अनुच्छेद 19(1)(g) का संरक्षण उपलब्ध नहीं हो सकता, तथापि नियमों को निस्संदेह अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरा उतरना होगा, जो मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध एक गारंटी है।तथापि यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यहाँ अनुच्छेद 14 के अंतर्गत जिस बात को चुनौती दी जा रही है, वह कार्यपालिका की कार्रवाई नहीं, बल्कि प्रत्यायोजित विधायन है। मनमानी कार्रवाई के जो परीक्षण कार्यपालिका की कार्रवाइयों पर लागू होते हैं, वे आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधायन पर लागू नहीं होते।प्रत्यायोजित विधायन को निरस्त किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसा विधायन प्रत्यक्षतः मनमाना हो;

अर्थात् ऐसा कानून, जिसकी अपेक्षा विधि-निर्माण शक्ति से प्रत्यायोजित प्राधिकरण से युक्तिसंगत रूप से नहीं की जा सकती।"

(महत्व दिया गया)

अतः यह स्पष्ट है कि मदिरा व्यापार से संबंधित मामलों में भी सरकार प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण अथवा मनमानी कार्यवाही नहीं कर सकती।

11. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता राजीव धवन ने तर्क दिया कि प्रत्यायोजित विधायन तथा सामान्यतः संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अंतर्गत की गई कार्यवाहियों पर लागू युक्तिसंगतता की अवधारणा यह है कि कार्यवाही प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण एवं मनमानी नहीं होनी चाहिए। उनके अनुसार नियम 17 अत्यधिक प्रत्यायोजन से ग्रस्त है तथा प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है।

12. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एस. आर. सिंह ने प्रतिवाद किया कि नियम 17 के अंतर्गत परिकल्पित भुगतान न तो शुल्क है और न ही कर , बल्कि यह भुगतान अपीलकर्ता को प्रदत्त विशिष्ट अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के परित्याग के बदले तथा अपीलकर्ता को प्रदान की गई सेवाओं के प्रतिफलस्वरूप मांगा जा रहा है।

13. इस चरण पर यह उल्लेखनीय है कि माननीय एकल न्यायाधीश तथा खंडपीठ दोनों ने इस न्यायालय के निर्णय *आंध्र प्रदेश सरकार बनाम अनाबेशाही वाइन एंड डिस्टिलरीज प्राइवेट लिमिटेड, [1988] 2 एससीसी 25* पर त्रुटिपूर्ण रूप से निर्भर किया। अनाबेशाही प्रकरण (उपरोक्त) में

शुल्क स्वयं आंध्र प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1968 की धारा 28(2) द्वारा अधिरोपित किया गया था। धारा 28 इस प्रकार है–

"28. लाइसेंस आदि का प्रपत्र एवं शर्तें:(1) इस अधिनियम के अंतर्गत जारी प्रत्येक परमिट अथवा प्रदान किया गया लाइसेंस, निर्धारित शुल्क के भुगतान पर, निर्धारित अवधि के लिए, निर्धारित प्रतिबंधों एवं शर्तों के अधीन, तथा निर्धारित प्रपत्र में और निर्धारित विवरणों सहित जारी या प्रदान किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत निर्धारित शर्तों में यह प्रावधान सम्मिलित हो सकता है कि लाइसेंसधारी, लाइसेंस प्राप्त परिसर में या उसके निकट, आबकारी अधिकारियों को आवास उपलब्ध कराए, जिसके लिए किराया या अन्य शुल्क देय हो; तथा उन व्ययों, प्रभारों और खर्चों (जिसमें आबकारी अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते भी सम्मिलित हैं) का भुगतान करे, जो सरकार इस अधिनियम, उसके अधीन बनाए गए नियमों तथा लाइसेंस के उपबंधों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के पर्यवेक्षण के संबंध में वहन करे।"

14. इसी प्रकार, नियम 15 अधिनियम की धारा 28 के अनुरूप बनाया गया था। नियम 15 इस प्रकार है–

15. (a) यदि आयुक्त द्वारा अपेक्षित किया जाए, तो लाइसेंसधारी डिस्टिलरी परिसर के भीतर अथवा आयुक्त द्वारा अनुमोदित किसी स्थान पर, नियम 14 के अंतर्गत नियुक्त कर्मचारियों के कार्यालय एवं निवास हेतु भवन उपलब्ध कराएगा।

(b) यदि आयुक्त द्वारा अपेक्षित किया जाए, तो लाइसेंसधारी डिस्टिलरी में नियुक्त सरकारी स्थापना के वेतन एवं भत्तों के संबंध में मांगी गई राशि सरकार के कोषागार में जमा करेगा; परंतु वह ऐसे किसी भी कर्मचारी को कोई प्रत्यक्ष भुगतान नहीं करेगा।

15. उपर्युक्त उपबंधों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि संबंधित धाराएँ एवं नियम इस बात का प्रावधान करते हैं कि वेतन एवं भत्ते, जिन्हें "स्थापना शुल्क" के रूप में वर्णित किया गया है, विवादित मांग-नोटिस के माध्यम से उसी रूप में वसूल किए जाने का प्रयास किया गया।

16. निर्विवाद रूप से, वर्तमान प्रकरण में अधिनियम अथवा नियमों में ऐसा कोई प्रावधान विद्यमान नहीं है। अतः अनाबेशाही वाइन एंड डिस्टिलरीज प्राइवेट लिमिटेड प्रकरण (उपरोक्त) का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता।

17. *मेसर्स गुजकेम डिस्टिलर्स इंडिया लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य,* [1992] 2 एससीसी 399 के मामले में पर्यवेक्षण शुल्क का अधिरोपण बॉम्बे मद्य निषेध अधिनियम, 1949 की धारा 58A से संबद्ध था। जम्मू एवं कश्मीर आबकारी अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है।

18. डॉ. धवन ने नियम 17 का संदर्भ देते हुए तर्क किया कि यह अत्यधिक प्रत्यायोजन से ग्रस्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है। इस संदर्भ में उन्होंने प्रतिपादित किया कि धारा 25(ओ) के अनुसार नियमों का उद्देश्य अधिनियम अथवा आबकारी राजस्व से संबंधित

किसी अन्य विधि के उपबंधों को क्रियान्वित करना होना चाहिए। उनका कथन है कि यदि "आम तौर पर" शब्द की अत्यधिक व्यापक व्याख्या की जाए तथा “और” को “या

” के रूप में पढ़ा जाए, तो यह न केवल व्याकरण के विपरीत होगा, बल्कि विधायिका के आशय के भी प्रतिकूल होगा। ऐसी व्याख्या से धारा 25(ओ) पूर्णतः अनियंत्रित हो जाएगी तथा लगभग किसी भी विषय पर लागू हो सकेगी। धारा 25(ओ) में नियंत्रणकारी तत्व यह है कि वह “आबकारी राजस्व” से संबंधित होना चाहिए।

19. “आबकारी राजस्व” की परिभाषा अधिनियम की धारा 3 में दी गई है, जो इस प्रकार है–

“‘आबकारी राजस्व’ से अभिप्राय उस राजस्व से है जो इस अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत अधिरोपित या आदेशित किसी भी शुल्क, फीस, कर, जुर्माना अथवा जब्ती से प्राप्त या प्राप्त होने योग्य हो...”

20. डॉ. धवन के अनुसार, धारा 3 में परिभाषित "शुल्क" वह प्रकार का शुल्क नहीं है जो नियम 17 के अंतर्गत आता हो, और इसलिए नियम 17 के उद्देश्य के लिए शुल्क अधिनियम द्वारा अधिकृत नहीं है। उन्होंने अधिनियम की विभिन्न धाराओं का भी संदर्भ दिया जहाँ “ड्यूटी” और “शुल्क” शब्दों का उल्लेख किया गया है और उनकी वसूली विशेष रूप से अधिकृत है।

धारा 5(क)	आयात के लिए शुल्क (ड्यूटी) का भुगतान
धारा 6	निर्यात के लिए शुल्क या ड्यूटी का भुगतान
धारा 8 से 10	परिवहन हेतु परमिट
धारा 11-ए, 12-ए	कब्जे हेतु लाइसेंस
धारा 16	ड्यूटी का अधिरोपण
धारा 17(घ)	निर्माण पर शुल्क के माध्यम से ड्यूटी का अधिरोपण
धारा 18	ड्यूटी निर्धारण
धारा 22(क)	लाइसेंस हेतु शुल्क या ड्यूटी
धारा 24	ड्यूटी की वसूली
धारा 24-बी	ड्यूटी, कर या शुल्क की वापसी

21. अतः उनका तर्क था कि जब विधायिका की मंशा अधिनियम में ही स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि कहाँ-कहाँ शुल्क , ड्यूटी अथवा कर अधिरोपित किया जा सकता है, तब धारा 25(ओ) में ऐसा कोई स्वतंत्र शुल्क अधिरोपित करने की शक्ति सम्मिलित करना, जो अधिनियम द्वारा अधिकृत नहीं है, धारा 25(ओ) को अत्यधिक व्यापक तथा पूर्णतः बिना दिशानिर्देश बना देगा। उन्होंने आगे यह भी प्रतिपादित किया कि नियम 17 का संबंध धारा 25(ग) से भी जोड़ा जा रहा है, जो डिस्टिलरियों, निजी गोदामों तथा शराब की भट्ठि के निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण से संबंधित है; किंतु उसमें ड्यूटी, कर या शुल्क अधिरोपित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

22. अब यह विधि का सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि विनियामक शक्तियों की सामान्यतः व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए। तथापि, राज्य सरकार को कर, शुल्क या ड्यूटी अधिरोपित करने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब ऐसी मांग विधि द्वारा अधिकृत हो तथा उसमें पर्याप्त दिशानिर्देश निहित हों।

23. *ए. एन. परशुरामन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1989) 4 SCC 683* में इस न्यायालय ने निम्नलिखित प्रतिपादित किया–

"विधायी प्रत्यायोजन से संबंधित प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में विचार किया जा चुका है, और इस पहलू पर विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है। यह सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि विधायी नीति का निर्धारण तथा आचरण के नियमों का निर्माण, विधायिका के अनिवार्य कार्य हैं, जिन्हें प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता। *जो अनुमेय है, वह यह कि विधायिका पर्याप्त दिशानिर्देश निर्धारित करने के पश्चात्, अधिनियम के उद्देश्य के क्रियान्वयन का कार्य प्रत्यायोजित प्राधिकारी को सौंप सकती है।*"

(विशेष रूप से रेखांकित किया गया)

24. *कुंज बिहारी लाल बुटेल बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, [2000] 3 SCC 40* में पैरा 14 में यह प्रतिपादित किया गया–

"14. हमारा यह भी मत है कि अधिनियम के उद्देश्यों को क्रियान्वित करने हेतु नियम बनाने की प्रत्यायोजित विधायी शक्ति, यदि किसी दिशानिर्देश के बिना सामान्य रूप से प्रदान की गई हो, तो उसका प्रयोग

इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि वह ऐसे मौलिक अधिकार, दायित्व या अक्षमताएँ उत्पन्न करे, जो स्वयं अधिनियम के प्रावधानों द्वारा परिकल्पित नहीं हैं।"

25. *देवी दास गोपाल कृष्णन बनाम पंजाब राज्य, [1967] 3 SCR 557 में पृष्ठ 565-566 पर यह प्रतिपादित किया गया–*

"उस धारा के अंतर्गत विधायिका ने दरों के निर्धारण के विषय में वस्तुतः स्वयं को लगभग अप्रभावी) कर लिया था और न तो उस धारा के अंतर्गत और न ही अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान के अंतर्गत कोई मार्गदर्शन प्रदान किया गया था–ऐसा कोई अन्य प्रावधान हमारे संज्ञान में नहीं लाया गया। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि ऐसी नीति संवैधानिक प्रावधानों से अनुमानित की जा सकती है, स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो यह अत्यधिक प्रत्यायोजन के सिद्धांत को ही समाप्त कर देगा। यह विधायिका द्वारा कार्यपालिका सरकार को बिना किसी दिशानिर्देश के शक्ति प्रदान करने को भी मान्यता दे देगा।हम विधायिका से न्यूनतम अपेक्षा यह करते हैं कि दरों के निर्धारण की ऐसी शक्ति प्रदान करते समय अधिनियम में स्पष्ट विधायी नीति अथवा दिशानिर्देश निर्धारित करे। चूँकि अधिनियम में ऐसी कोई नीति निर्धारित नहीं की गई थी, अतः यह माना जाना चाहिए कि संशोधन से पूर्व की स्थिति में उक्त अधिनियम की धारा 5 शून्य थी।"

26. उपर्युक्त मामलों में, जहाँ नियम 17 के समान शुल्क अधिरोपित किए गए थे, वे ऐसे प्रकरण थे जिनमें अधिरोपण का प्रावधान स्वयं अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से किया गया था। अतः यह स्पष्ट है कि नियम 17 को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है।

27. प्रतिवादियों का यह मामला है कि नियम 17 का आशय यह था कि अपीलकर्ता को प्रदत्त विशिष्ट अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के परित्याग तथा प्रदान की गई सेवाओं के प्रतिफलस्वरूप यह राशि ली जा रही है, अतः यह न तो शुल्क है और न ही कर । यह तर्क दिया गया कि सरकार, अपीलकर्ता के लिए आबकारी कर्मचारियों की प्रतिनियुक्ति करके सेवा प्रदान कर रही थी, न केवल इस उद्देश्य से कि निर्माता द्वारा स्पिरिट का डिनैचुरेशन विधिपूर्वक किया जा रहा है, बल्कि विशेष रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए भी कि आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण, विधि के प्रतिकूल, न तो डिस्टिलरी स्वामी के हाथों से और न ही किसी खुदरा विक्रेता, लाइसेंसधारी अथवा परमिट धारक के हाथों से बाहर जाए।आगे यह भी तर्क दिया गया कि प्रदान की गई सेवाओं और अधिरोपित शुल्क के बीच सह-संबंध का होना आवश्यक है।

28. यह प्रश्न कि क्या करदाता अथवा लाइसेंसधारी राज्य के राजस्व संकलन की निगरानी हेतु नियुक्त सरकारी कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करने के लिए बाध्य होंगे, इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा इंडियन मीका माइकानाइट इंडस्ट्रीज बनाम बिहार राज्य, [1971] 2

एससीसी 236 में निर्णीत किया जा चुका है। पैरा 17 में इस प्रकार कहा गया है–

"... सरकार द्वारा अपीलकर्ता तथा अन्य समान लाइसेंसधारियों को प्रदान की जाने वाली एकमात्र सेवा यह है कि आबकारी विभाग को एक विस्तृत कर्मचारी-वर्ग बनाए रखना पड़ता है, न केवल इस उद्देश्य से कि निर्माता द्वारा डिनैचुरेशन की प्रक्रिया विधिपूर्वक की जा रही है, बल्कि इस उद्देश्य से भी कि आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण का बाद में थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता या अन्य किसी लाइसेंसधारी अथवा परमिट-धारक के हाथों में दुरुपयोग न हो, और उसे मानव उपभोग योग्य मदिरा में परिवर्तित कर भारी ड्यूटी के भुगतान से बचा न लिया जाए। जहाँ तक निर्माण प्रक्रिया का संबंध है, अपीलकर्ता अथवा अन्य समान लाइसेंसधारियों का उससे कोई संबंध नहीं है। वे केवल निर्मित आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण के क्रेता हैं। अतः निर्माण प्रक्रिया की निगरानी की लागत अथवा निर्माताओं को प्रदान की गई किसी सहायता की राशि उपभोक्ताओं, जैसे अपीलकर्ता, से वसूल नहीं की जा सकती। आगे, बोर्ड के नियम 9 के अंतर्गत निर्माण प्रक्रिया की आबकारी विभाग द्वारा की जाने वाली वास्तविक निगरानी की लागत का वहन निर्माता द्वारा किया जाना आवश्यक है। इस संबंध में दोहरी वसूली नहीं हो सकती।उच्च न्यायालय के मतानुसार, आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण के पश्चातवर्ती हस्तांतरण तथा विभिन्न व्यक्तियों–जैसे थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता अथवा अन्य निर्माताओं–के हाथों में उसकी अभिरक्षा भी कड़ी एवं प्रभावी निगरानी की अपेक्षा करती है, क्योंकि आत्स्वरूपी

मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण को पेय मदिरा में परिवर्तित कर भारी ड्यूटी से बचने का जोखिम रहता है। यदि इस निष्कर्ष को सही भी मान लिया जाए, तब भी ऐसा करके राज्य उपभोक्ता को कोई सेवा प्रदान नहीं कर रहा है; वह केवल अपने अधिकारों की रक्षा कर रहा है। इसके अतिरिक्त, इस मामले में राज्य, जो न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित करने की स्थिति में था कि अपीलकर्ता तथा अन्य समान लाइसेंसधारियों को कौन-सी सेवाएँ प्रदान की गईं, उन सेवाओं पर कितना व्यय (या संभावित व्यय) हुआ तथा शुल्क के रूप में कितनी राशि वसूल की गई–ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत करने में असफल रहा है।अपीलकर्ता की ओर से यह आरोप लगाया गया है कि राज्य शुल्क के रूप में भारी राशि एकत्र कर रहा है और बदले में नगण्य या कोई सेवा प्रदान नहीं कर रहा है। प्रदान की गई सेवाओं और अधिरोपित शुल्क के बीच सह-संबंध मूलतः तथ्य का प्रश्न है। प्रथम दृष्टया यह अधिरोपण अत्यधिक प्रतीत होता है, भले ही यह मान लिया जाए कि राज्य लाइसेंसधारियों को कुछ सेवा प्रदान कर रहा है। राज्य के पास ऐसी सामग्री होनी चाहिए जिससे अधिरोपण और प्रदान की गई सेवाओं के बीच सह-संबंध को कम-से-कम सामान्य रूप में स्थापित किया जा सके; किंतु राज्य ने ऐसी सामग्री न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना उचित नहीं समझा।

अतः विवादित नियम के अंतर्गत अधिरोपण को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।"

(विशेष रूप से रेखांकित किया गया)

29. *केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त बनाम छाता शुगर कंपनी लिमिटेड, [2004] 3* एससीसी 466 में एक प्रश्न यह था कि क्या राज्य सरकार द्वारा किसी कर, शुल्क या लेवी की वसूली हेतु लगाए गए प्रशासनिक प्रभार उस व्यक्ति पर डाले जा सकते हैं, जिससे उक्त कर, शुल्क या लेवी वसूला गया है। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्णय दिया कि ऐसा अधिरोपण कर होगा, न कि शुल्क , और चूँकि वह कर है, इसलिए उसका विधिसम्मत प्राधिकरण आवश्यक है। पैरा 14 में यह कहा गया–

"... अतः यू.पी. अधिनियम के अंतर्गत लगाया गया प्रशासनिक प्रभार एक कर है, न कि शुल्क ..."

30. उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक सेवाओं के नाम पर किया गया अधिरोपण वस्तुतः कर है, न कि शुल्क। ऐसा अधिरोपण यदि किसी विधिक प्रावधान के समर्थन के बिना किया जाए तो वह अविवेकपूर्ण एवं अनुचित है।

31. *कॉर्पोरेशन ऑफ कलकत्ता बनाम लिबर्टी सिनेमा, [1965] 2 एससीआर 477में* यह स्पष्ट किया गया कि नामकरण का कोई विशेष महत्व नहीं है। उस मामले में बहुमत निर्णय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम,1951 के अंतर्गत अधिरोपण को "शुल्क" कहा गया था, तथापि वह वस्तुतः एक कर था। (SCR पृष्ठ 483, 484 एवं 490 पर)

"... अब प्रथम प्रश्न पर, अर्थात् क्या यह अधिरोपण सेवाओं के प्रतिफल में है, यह कहा गया कि ऐसा है क्योंकि धारा 548 में 'शुल्क' शब्द का

प्रयोग किया गया है। परंतु निश्चय ही, प्रयुक्त शब्दों से निर्णायक परिणाम नहीं निकलता। 'शुल्क' शब्द को अंग्रेज़ी भाषा में ऐसा कोई कठोर तकनीकी अर्थ प्राप्त नहीं है कि वह केवल सेवाओं के प्रतिफल में की गई वसूली को ही इंगित करे। इस प्रकार के अर्थ के समर्थन में कोई प्राधिकार प्रस्तुत नहीं किया गया। ...अतः अधिनियम का आशय 'शुल्क' शब्द का प्रयोग केवल सेवाओं के प्रतिफल में वसूली के अर्थ में करना नहीं था। ... धारा 548 में केवल 'शुल्क' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि 'लाइसेंस शुल्क-सेवाओं के प्रतिफल में शुल्क ' शब्दों का प्रयोग किया गया है, और ये शब्द अनिवार्य रूप से सेवाओं के प्रतिफल में शुल्क का अर्थ नहीं देते।वस्तुतः, हमारे संविधान में ''लाइसेंस शुल्क-सेवाओं के प्रतिफल में शुल्क ' तथा 'सेवाओं प्रदान की गई है' के लिए 'शुल्क' को भिन्न प्रकार के अधिरोपण के रूप में परिकल्पित किया गया है। पूर्व वाला अनिवार्य रूप से सेवाओं के प्रतिफल में शुल्क नहीं है। यह अनुच्छेद 110(2) एवं अनुच्छेद 199(2) के अवलोकन से स्पष्ट है, जहाँ दोनों अभिव्यक्तियों का पृथक प्रयोग किया गया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि वे समान नहीं हैं। ...अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धारा 548 के अंतर्गत अधिरोपण 'शुल्क' नहीं है, क्योंकि अधिनियम में ऐसी किसी विशेष सेवा का प्रावधान नहीं है, जो आरोपित व्यक्ति को कोई विशेष लाभ प्रदान करती हो। निगम द्वारा किया गया निरीक्षण कार्य, जो केवल इस बात की जाँच के लिए है कि लाइसेंसधारी द्वारा लाइसेंस की शर्तों का पालन किया जा रहा है या नहीं, उसे सेवा नहीं कहा जा सकता। यहाँ अधिरोपण की राशि को किसी सेवा की लागत से संबद्ध करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। यह

अधिरोपण एक कर (है। यह विवादित नहीं है कि यदि अधिरोपण शुल्क नहीं है, तो वह कर ही होगा।"

(विशेष रूप से रेखांकित किया गया)

32. *मेसर्स लीलासन्स ब्रेवरीज (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1992] 3 SCC 293, M.P. ब्रेवरीज रूल्स 1970 के रूल 22* के मामले में, जिसके अंतर्गत अधिकारियों के वार्षिक व्यय की पूर्ति हेतु अधिरोपण किया गया था, को अधिनियम की परिधि से परे तथा राज्य की नियम-निर्माण शक्ति से अधिक मानते हुए निरस्त कर दिया गया।

---यह कर क्यों है और शुल्क क्यों नहीं

33. संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत, कर और शुल्क भिन्न अवधारणाएँ हैं। आबकारी कर का एक प्रकार है। यह विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों से स्पष्ट है–

(i). अनुच्छेद 110(2) एवं अनुच्छेद 199(2) में *मनी बिल* की अवधारणा स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि करों को संसद द्वारा पारित किया जाना चाहिए।
(देखें – कॉर्पोरेशन ऑफ कलकत्ता बनाम लिबर्टी सिनेमा, [1965] 2 एससीआर 477, पृष्ठ 483)

(ii). (संघ सूची (सूची I) में कर एवं आबकारी से संबंधित प्रविष्टियाँ 82 से 92-बी तक पाई जाती हैं।

(iii). (राज्य सूची (सूची II) में कर संबंधी प्रविष्टियाँ 42 से 63 तक हैं।

(iv). आबकारी का विशिष्ट उल्लेख संघ सूची की प्रविष्टि 84 तथा राज्य सूची की प्रविष्टि 51 में किया गया है।

(v). राज्य सूची की प्रविष्टि 51 विशेष रूप से मदिरा पर आबकारी से संबंधित है।

(vi). शुल्क का पृथक उल्लेख संघ सूची की प्रविष्टि 96 तथा राज्य सूची की प्रविष्टि 66 में किया गया है, जो एक पृथक अवधारणा है, और उसे भी विधायिका द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है।

अतः **कर**, **आबकारी** तथा **शुल्क**–तीनों को विधायिका द्वारा विधिवत् पारित किया जाना आवश्यक है।

34. *पंजाब राज्य बनाम देवन्स मॉडर्न ब्रेवरीज लिमिटेड, [2004] 11 एससीसी* 26 (पैरा 25), *के.टी. मूपिल नायर बनाम केरल राज्य,* [1961] 3 एससीआर 77 (पैरा 89 एवं 91), *अहमदाबाद शहरी विकास प्राधिकरण बनाम शरदकुमार जयंतीकुमार पासावाला,* [1992] 3 एससीसी 285 (पैरा 6-7), *हिंदुस्तान टाइम्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* [2003] 1 एससीसी 591 (पैरा 30) तथा *बिमल चंद्र बनर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य,* [1970] 2 एससीसी 467 (पैरा 14)इन सभी मामलों में यह प्रतिपादित किया गया है कि अनुच्छेद 265 के अधीन कोई भी कर केवल विधि द्वारा ही अधिरोपित किया जा सकता है; उसे उपविधियों या नियमों के माध्यम से आरोपित करना विधिसम्मत नहीं है।

क्या वसूल किए गए शुल्क और प्रदत्त सेवा के बीच प्रतिफल-संबंध है?

35. हमने पूर्व में उल्लेख किया है कि प्रतिवादियों का तर्क यह है कि वे आबकारी कर्मचारियों को नियुक्त कर सेवा प्रदान कर रहे थे– ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि स्पिरिट का डिनैचुरेशन विधिवत् हो; तथा यह विशेष रूप से देखने के लिए कि आत्स्वरूपी मदिरा का अवनियमन/विकृतीकरण, डिस्टिलरी स्वामी, खुदरा विक्रेता, लाइसेंसधारी या परमिटधारी के हाथों से विधि-विरुद्ध बाहर न जाए।अतः यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा वहन किए गए व्यय और नियम 17 के अंतर्गत वसूल किए जाने वाले शुल्क के बीच कोई सह-संबंध नहीं था।दूसरे शब्दों में, वसूल किए गए शुल्क और प्रदान की गई सेवाओं के बीच कोई प्रतिफल-संबंध नहीं है।संविधान पीठ ने *आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयर,* [1954] एससीआर 1005 (पृष्ठ 1040, 1041 एवं 1044) में यह प्रतिपादित किया कि शुल्क तभी वैध माना जाएगा जब उसके बदले में प्रतिफल हो।अर्थात्, यदि सेवा और शुल्क के बीच युक्तिसंगत एवं प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, तो वह शुल्क न होकर 'कर' माना जाएगा

"... चूँकि कर का उद्देश्य किसी विशेष व्यक्ति को कोई विशिष्ट लाभ प्रदान करना नहीं होता, अतः करदाता और सार्वजनिक प्राधिकरण के बीच प्रतिफल-संबंध का कोई तत्व नहीं होता। कराधान की एक अन्य विशेषता यह है कि यह सामान्य सार्वजनिक भार का हिस्सा है, और करदाता पर लगाए गए कर की मात्रा सामान्यतः उसकी भुगतान क्षमता

पर निर्भर करती है।अब शुल्क की ओर आते हुए, 'शुल्क ' को सामान्यतः इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि वह किसी सरकारी एजेंसी द्वारा व्यक्तियों को प्रदान की गई विशेष सेवा के लिए लिया गया प्रभार है। लगाए गए शुल्क की राशि सिद्धांततः उस व्यय पर आधारित होनी चाहिए जो सरकार द्वारा सेवा प्रदान करने में किया गया है, यद्यपि अनेक मामलों में व्यय का निर्धारण मनमाने ढंग से किया जाता है।परंतु वर्तमान मामले में सरकार द्वारा किए गए व्यय और धारा 76 के प्रावधान के अंतर्गत योगदान के रूप में वसूल की गई राशि के बीच पूर्णतः किसी भी प्रकार का सह-संबंध अनुपस्थित है। ऐसी परिस्थितियों में प्रतिफल अथवा प्रत्युपकार का सिद्धांत किसी भी प्रकार से लागू नहीं हो सकता।अतः हमारे मत में उच्च न्यायालय यह कहने में सही था कि धारा 76 के अंतर्गत लगाया गया योगदान एक कर है, न कि शुल्क ,और फलस्वरूप राज्य विधानमंडल के लिए इस प्रकार का प्रावधान अधिनियमित करना उसकी विधायी शक्ति से परे था।"

(महत्व प्रदान किया गया)

उपर्युक्त कारणों के आधार पर हम यह घोषित करते हैं कि–

(a) नियम 17 को कोई वैधानिक समर्थन प्राप्त नहीं है और यह अधिनियम की परिधि से परे है।

(b) यह स्पष्टतः अन्यायपूर्ण एवं मनमाना है।

(c) नियम 17 का प्रावधान स्पष्ट रूप से एक कर है, न कि शुल्क।

(d) नागरिकों पर ऐसे कर या शुल्क का अधिरोपण, उन सेवाओं के लिए जो राज्य स्वयं के लिए प्रदान करता है न कि करदाताओं के लिए, स्पष्टतः अवैध, मनमाना एवं अनुचित है।

36. अब हम प्रतिवादियों के अधिवक्ता की अंतिम दलील पर आते हैं। प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क प्रस्तुत किया कि यदि यह न्यायालय नियम 17 को अधिनियम के प्रतिकूल घोषित कर निरस्त कर दे, तो ऐसा निर्णय भावी प्रभाव से लागू किया जाए तथा राज्य को अन्य बातों के साथ-साथ, मध्यवर्ती अवधि में अपीलकर्ता द्वारा अदा की गई शुल्क-राशि को अपने पास रखने की अनुमति दी जाए।

37. अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया जो फेडरेशन ऑफ माइनिंग एसोसिएशन ऑफ राजस्थान बनाम राजस्थान राज्य, (1992) सप्प. 2 एससीसी 239में दिया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया था कि किसी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित करने का प्रभाव केवल निर्णय की तिथि से ही लागू होगा।

उपर्युक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता, निम्नलिखित कारणों से–

38. प्रथम, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.09.2000 को पारित अंतरिम आदेश में स्पष्ट रूप से प्रतिदान का प्रावधान निम्नलिखित शब्दों में किया गया था–

"कोई स्थगन नहीं। यदि अपीलें अंततः स्वीकार की जाती हैं, तो प्रतिवादीगण आदेशित प्रतिदान पर वैधानिक दर से ब्याज अदा करेंगे।" द्वितीय, अधिनियम की धारा 24-बी स्वयं निम्नलिखित उपबंध करती है–

"... इस अधिनियम के अधीन देय न होने पर भी यदि किसी व्यक्ति द्वारा कोई शुल्क, कर, जुर्माना या फीस अदा की गई हो, तो ऐसी राशि उस व्यक्ति को प्रतिदान की जाएगी, साथ ही चूक की अवधि के लिए प्रति माह 2% की दर से ब्याज सहित..."

39. तदनुसार, हम प्रतिवादियों को निर्देश देते हैं कि मध्यवर्ती अवधि में की गई उक्त भुगतान राशि को वैधानिक दर से गणना किए गए ब्याज सहित वापस करें।

40. परिणामस्वरूप, माननीय एकल न्यायाधीश तथा डिवीजन बेंच द्वारा एल.पी.ए. सं. 159/1990 में पारित आदेश निरस्त किए जाते हैं। अपीलें स्वीकार की जाती हैं। प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, पक्षकारों को अपने-अपने व्यय वहन करने का निर्देश दिया जाता है।

डी.जी. अपीलें स्वीकार की गईं।

यह अनुवाद पैनल अनुवादक
मधु कुमारी के द्वारा किया गया है।